

पित्रा क्षत्रियभूपाद्यैश्चेरमाद्यैः विचक्षणः। पद्मावत्या समं मात्रा दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः ॥१९९॥
कृत्वा तपो जगत्सारं संसारम्भोधिपारदम्। निर्मलं निर्मलः सोपि संन्यासेन समं स्थिरः ॥२००॥
ध्यायन्पादाम्बुजद्वन्द्वं जिनेन्द्राणां सुखप्रदम्। सहस्रारं दिवं प्राप्तः करकण्डुमुनीश्वरः ॥२०१॥
दन्तिवाहनभूपाद्याः कालान्ते तेऽपि सद्भिद्यः। स्वस्वपुण्यानुसारेण स्वर्गलोकं ययुः सुखम् ॥२०२॥
पुरा पद्मेन संपूज्य श्रीजिनं कोटिशर्मदम्। करकण्डुः सुखं प्राप्तः किं पुनश्चाष्टधार्चनैः ॥२०३॥
ये भव्याः श्रीजिनेन्द्राणां भक्त्या पादद्वयार्चनम्। नित्यमेव प्रकुर्वन्ति ते लभन्ते परं सुखम् ॥२०४॥

गोपालो धनदत्तवागपि पुरा मुग्धोऽपि पद्मेन च
श्रीमज्जैनपदाम्बुजं शुभतरं संपूज्य पूज्योभवत्।
देवाद्वैः करकण्डुनामनृपतिः श्रीमत्प्रभाचन्द्रव-
त्तस्माद्भव्यजनैर्जिनेन्द्रचरणाम्भोजं सदाभ्यर्च्यते ॥२०५॥

इति कथाकोशे करकण्डुनृपतेराख्यानं समाप्तम्।

११४. जिनपूजाफलप्राप्तभेकाख्यानम्

श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं भारतीं भुवनोत्तमाम्। वक्ष्येहं सद्गुरुं नत्वा जिनपूजाफलोदयम् ॥१॥

राजाओं के साथ जिनदीक्षा ले योगी हो गया। योगी होकर करकण्डु मुनि ने खूब तप किया, जो कि निर्दोष और संसार-समुद्र से पार करने वाला है। अन्त में परमात्म-स्मरण में लीन हो उसने भौतिक शरीर छोड़ा। तप के प्रभाव से उसे सहस्रार स्वर्ग में दिव्य देह मिली। पद्मावती, दन्तिवाहन तथा अन्य राजा तो अपने पुण्य के अनुसार स्वर्गलोक गए ॥१९३-२०२॥

करकण्डु ने ग्वाले के जन्म में केवल एक कमल के फूल द्वारा भगवान् की पूजा की थी। उसे उसका जो फल मिला उसे आप सुन चुके हैं। तब जो पवित्र भावपूर्वक आठ द्रव्यों से भगवान् की पूजा करेंगे उनके सुख का तो फिर पूछना ही क्या? थोड़े में यों समझिए कि जो भव्यजन भक्ति से भगवान् की प्रतिदिन पूजा किया करते हैं वे सर्वोत्तम-सुख मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं, तब और सांसारिक सुखों की तो उनके सामने गिनती ही क्या हैं? ॥२०३-२०४॥

एक बे-समझ ग्वाले ने जिन भगवान् के पवित्र चरणों की एक कमल के फूल से पूजा की थी, उसके फल से वह करकण्डु राजा होकर देवों द्वारा पूज्य हुआ। इसलिए सुख की चाह करने वाले भव्यजनों को भी उचित है कि वे जिन-पूजा की ओर अपने ध्यान को आकर्षित करें। उससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा, क्योंकि भावों का पवित्र होना पुण्य का कारण है और भावों के पवित्र करने को जिन-पूजा भी एक प्रधान कारण है ॥२०५॥

११४. जिनपूजन-प्रभाव-कथा

संसार द्वारा पूजे जाने वाले जिनभगवान् को, सर्वश्रेष्ठ गिनी जाने वाली जिनवाणी को और राग, द्वेष, मोह, माया आदि दोषों से रहित परम वीतरागी साधुओं को नमस्कार कर जिनपूजा द्वारा फल प्राप्त

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां पूजा पापप्रणाशिनी। स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्षं परमागमे ॥२॥
 यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रो धर्महेतवे। स एव दर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः ॥३॥
 यस्तस्या निन्दकः पापी स निन्द्यो जगति ध्रुवम्। दुःखदारिद्र्यरोगादिदुर्गतेर्भाजनं भवेत् ॥४॥
 स्नपनं पूजनं प्रीत्या स्तवनं जपनं तथा। जिनानामाकृतीनां च कुर्याद्भव्यमतल्लिकः ॥५॥
 जिनयात्राप्रतिष्ठाभिर्गिरिष्ठाभिर्विशिष्टधीः। प्रासादप्रतिमोद्धारैः कुर्याद्धर्मप्रभावनाम् ॥६॥
 यस्यां संक्रियमाणायां सत्यं स्वर्गपवर्गयोः। प्राप्यते कारणं पूतं सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥७॥
 इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्क-नरेन्द्रार्चितपङ्कजाः। श्रीजिनेन्द्राः सदा पूज्याः सतां शर्मश्रिये मुदा ॥८॥
 जिनेन्द्रार्चा महापुण्यं प्रसिद्धवचनं यतः। जिनपूजासमं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥९॥
 अनेकैर्भव्यसंमुखैर्भरतादिभिरुत्तमैः। प्राप्तं जिनेन्द्रपूजायाः फलं केनात्र वर्णयते ॥१०॥
 जलाद्यैरष्टभिर्द्रव्यैर्जिनार्चायाः किमुच्यते। पद्मेनैकेन भेकेन फलं प्राप्तं यदुत्तमम् ॥११॥

तथा च समन्तभद्रस्वामिभिरुक्तं—

अर्हच्चरणसपर्या महानुभावं महात्मनामवदत्। भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥

करने वाले एक मेंढक की कथा लिखी जाती है ॥१॥

शास्त्रों में उल्लेख किए उदाहरणों द्वारा यह बात खुलासा देखने में आती है कि जिन भगवान् की पूजा पापों की नाश करने वाली और स्वर्ग-मोक्ष के सुखों की देने वाली है। इसलिए जो भव्यजन पवित्र भावों द्वारा धर्मवृद्धि के अर्थ जिनपूजा करते हैं वे ही सच्चे सम्यग्दृष्टि हैं और मोक्ष जाने के अधिकारी हैं। इसके विपरीत पूजा की जो निन्दा करते हैं वे पापी हैं और संसार में निन्दा के पात्र हैं। ऐसे लोग सदा दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक आदि कष्टों को भोगते हैं और अन्त में दुर्गति में जाते हैं। अतएव भव्यजनों को उचित है कि वे जिनभगवान् का अभिषेक, पूजन, स्तुति, ध्यान आदि सत्कर्मों को सदा किया करें। इसके सिवा तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, जिन मन्दिरों का जीर्णोद्धार आदि द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करना चाहिए। इन पूजा प्रभावना आदि कारणों से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। जिनभगवान् इंद्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुषों द्वारा पूज्य हैं। इसलिए उनकी पूजा तो करनी ही चाहिए। जिनपूजा के द्वारा सभी उत्तम-उत्तम सुख मिलते हैं। जिनपूजा करना महापुण्य का कारण है, ऐसा शास्त्रों में जगह-जगह लिखा मिलता है। इसलिए जिनपूजा समान दूसरा पुण्य का कारण संसार में न तो हुआ और न होगा। प्राचीन काल में भरत जैसे अनेक बड़े-बड़े पुरुषों ने जिनपूजा द्वारा जो फल प्राप्त किया है, किसकी शक्ति है जो उसे लिख सके। आठ द्रव्यों से पूजा करने वाले जिनपूजा द्वारा जो फल लाभ करते हैं, उनके सम्बन्ध में हम क्या लिखें, जब कि केवल फूल से पूजा कर एक मेंढक ने स्वर्ग सुख प्राप्त किया ॥२-११॥

समन्तभद्र स्वामी ने भी इस विषय में लिखा है-राजगृह में हर्ष से उत्तम हुए एक मेंढक ने सत्पुरुषों को यह स्पष्ट बतला दिया कि केवल एक फूल द्वारा भी जिन भगवान् की पूजा करने से

अस्य कथा—

अथ जम्बूमति द्वीपे मेरोर्दक्षिणादिवकृते। क्षेत्रे तीर्थेशिनां जन्मपवित्रेनैव भारते ॥१२॥
 देशोस्ति मगधो नाम्ना निवेशो वा जगच्छ्रियः। जना यत्र वसन्त्युच्चैर्धनैर्धान्यैः सुधर्मतः ॥१३॥
 तत्र राजगृहं नाम नगरं गुणिभिर्वरम्। भोगोपभोगसामग्रीप्राप्त्या यत्र निरन्तरम् ॥१४॥
 यन्नराः सुरशोभाढ्या नार्यो वा सुरकन्यकाः। सम्यक्त्वव्रतसम्पन्नास्तस्मात्स्वर्गाधिकं पुरम् ॥१५॥
 यत्र शर्मकरो धर्मः प्रसिद्धो जिनभाषितः। तस्य किं वर्ण्यते शोभा त्रैलोक्यप्रीतिदायिनी ॥१६॥
 तत्पाताभूत्ववित्रात्मा श्रेणिको दर्शनप्रियः। श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः ॥१७॥
 यः प्रतापः स्वशत्रूणां शान्तो वा चन्द्रमाः सताम्। प्रजानां पालने नित्यं पिता वा हितकारकः ॥१८॥
 तस्य राज्ञी महासाध्वी रूपसौभाग्यशालिनी। चेलिनी जिनचन्द्राणां चरणार्चनकोविदा ॥१९॥
 सम्यक्त्वव्रतसद्भूषारत्नभूषाविराजिता। सर्वविज्ञानसम्पन्ना जिनवाणीव सुन्दरा ॥२०॥
 नागतोभवच्छ्रेष्ठी परमेष्ठिपराङ्मुखः। श्रेष्ठिनी भवदत्ताख्या तस्याभूत्प्राणवल्लभा ॥२१॥

उत्तम फल प्राप्त होता है जैसा कि मैंने प्राप्त किया।

अब मेंढक की कथा सुनिए

यह भारतवर्ष जम्बूद्वीप के मेरु की दक्षिण दिशा में है। इसमें अनेक तीर्थंकरों का जन्म हुआ है। इसलिए यह महान् पवित्र है। मगध भारतवर्ष एक प्रसिद्ध और धनशाली देश है। सारे संसार की लक्ष्मी जैसे यहीं आकर इकट्ठी हो गई हो। यहाँ के निवासी प्रायः धनी हैं, धर्मात्मा हैं, उदार हैं और परोपकारी हैं ॥१२-१३॥

जिस समय की यह कथा है उस समय मगध की राजधानी राजगृह एक बहुत सुन्दर शहर था। सब प्रकार की उत्तम से उत्तम भोगोपभोग की वस्तुएँ वहाँ बड़ी सुलभता से प्राप्त थीं। विद्वानों का उसमें निवास था। वहाँ के पुरुष देवों से और स्त्रियाँ देवबालाओं से कहीं बढ़कर सुन्दर थीं। स्त्री-पुरुष प्रायः सब ही सम्यक्त्वरूपी भूषण से अपने को सिंगारे हुए थे और इसलिए राजगृह उस समय मध्यलोक का स्वर्ग कहा जाता था। वहाँ जैनधर्म का ही अधिक प्रचार था। उसे प्राप्त कर सब सुख-शान्ति लाभ करते थे ॥१४-१६॥

राजगृह के राजा तब श्रेणिक थे। श्रेणिक धर्मज्ञ थे। जैनधर्म और जैनतत्त्व पर उनका पूर्ण विश्वास था। भगवान् की भक्ति उन्हें उतनी ही प्रिय थी, जितनी कि भौरै को कमलिनी। उनका प्रताप शत्रुओं के लिए मानों धधकती आग थी। सत्पुरुषों के लिए वे शीतल चन्द्रमा थे। पिता अपनी सन्तान को जिस प्यार से पालता है श्रेणिक का प्यार भी प्रजा पर वैसा ही था। श्रेणिक की कई रानियाँ थी। चेलना उन सबमें उन्हें अधिक प्रिय थी। सुन्दरता में, गुणों में, चतुरता में चेलना का आसन सबसे ऊँचा था। उसे जैनधर्म से, भगवान् की पूजा-प्रभावना से बहुत ही प्रेम था। कृत्रिम भूषणों द्वारा सिंगार करने को महत्त्व न देकर उसने अपने आत्मा को अनमोल सम्यग्दर्शन रूप भूषण

सर्वदासौ महामायावेष्टितः श्रेष्ठिकः कुधीः। एकदा स्वाङ्गणे वाप्यां मृत्वा भेको महानभूत् ॥२२॥
 नरो मृत्वा यतो जातः पापात्तोयचरोत्र सः। तस्मात्पापं न कर्त्तव्यं भो भव्याः संकटेऽपि च ॥२३॥
 कदाचित्सा समायाता भवदत्ता जलार्थिनी। तां विलोक्य स मण्डूको जातो जातिस्मरस्ततः ॥२४॥
 तस्याः समीपमागत्य तदङ्गे चटितो द्रुतम्। निर्घाटितस्तया सोपि रोमाञ्चितशरीरया ॥२५॥
 तथापि पूर्वसम्बन्धाद्दुर्गुरः प्रीतिनिर्भरः। तस्यामुच्चैश्चटत्येव मत्वेति प्राक्तनी प्रिया ॥२६॥
 ततस्तया ममेष्टोयं कोपि जातः कुयोनिजः। इति ज्ञात्वावधिज्ञानी पृष्टः श्रीसुव्रतो मुनिः ॥२७॥
 तेनोक्तं सुव्रताख्येन मुनिना ज्ञानचक्षुषा। मूढस्ते नागदत्तोयं पतिर्मायासमन्वितः ॥२८॥
 संजातः पापतः पुत्रि मण्डूको मोहमण्डितः। श्रुत्वेति तं मुनिं नत्वा भक्त्या संसारतारणम् ॥२९॥
 तयासौ मोहतो नीत्वा दर्दुरः स्वगृहे धृतः। तत्र हृष्टमनाः सोपि तस्थौ यावत्ततोन्मदा ॥३०॥
 आगत्य वनपालस्तं राजानं श्रेणिकं मुदा। नत्वा व्यजिज्ञपद्देव दिव्ये वैभारपर्वते ॥३१॥
 इन्द्रनागेन्द्रचन्द्राद्यैः समर्चितपदद्वयः। वर्द्धमानो जिनेन्द्रोसौ समायातो जगत्प्रियः ॥३२॥

से भूषित किया था। जिनवाणी सब प्रकार के ज्ञानविज्ञान से परिपूर्ण है और अतएव वह सुन्दर है, चेलना में किसी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की कमी न थी। इसलिए उसकी रूपसुन्दरता ने और अधिक सौन्दर्य प्राप्त कर लिया था। ‘सोने में सुगन्ध’ की उक्ति उस पर चरितार्थ थी ॥१७-२०॥

राजगृह में एक नागदत्त नाम का सेठ रहता था। वह जैनी न था। इसकी स्त्री का नाम भवदत्ता था। नागदत्त बड़ा मायाचारी था। सदा माया के जाल में वह फँसा हुआ रहता था। इस मायाचार के पाप से मरकर यह अपने घर के आँगन की बावड़ी में मेंढक हुआ। नागदत्त यदि चाहता तो कर्मों का नाश कर मोक्ष जाता, पर पाप कर वह मनुष्य पर्याय से पशुजन्म में आया, एक मेंढक हुआ। इसलिए भव्य-जनों को उचित है कि वे संकट समय भी पाप न करें ॥२१-२३॥

एक दिन भवदत्ता इस बावड़ी पर जल भरने को आई उसे देखकर मेंढक को जातिस्मरण हो गया। वह उछल कर भवदत्ता के वस्त्रों पर चढ़ने लगा। भवदत्ता ने डरकर उसे कपड़ों पर से झिड़क दिया। मेंढक फिर भी उछल-उछलकर उसके वस्त्रों पर चढ़ने लगा। उसे बार-बार अपने पास आता देखकर भवदत्ता बड़ी चकित हुई और डरी भी। पर इतना उसे भी विश्वास हो गया कि इस मेंढक का और मेरा पूर्वजन्म का कुछ न कुछ सम्बन्ध होना ही चाहिए। अन्यथा बार-बार मेरे झिड़क देने पर भी यह मेरे पास आने का साहस न करता। जो हो, मौका पाकर कभी किसी साधु-सन्त से इसका यथार्थ कारण पूछूँगी ॥२४-२७॥

भाग्य से एक दिन अवधिज्ञानी सुव्रत मुनिराज राजगृह में आकर ठहरे। भवदत्ता को मेंढक का हाल जानने की बड़ी उत्कण्ठा थी। इसलिए वह तुरन्त उनके पास गई उनसे प्रार्थना कर उसने मेंढक का हाल जानने की इच्छा प्रकट की। सुव्रत मुनिराज ने तब उससे कहा-जिसका तू हाल पूछने को आई है, वह दूसरा कोई न होकर तेरा पति नागदत्त है। वह बड़ा मायाचारी था, इसलिए मर कर माया के पाप से यह मेंढक हुआ है। उन मुनि के संसार-पार करने वाले वचनों को सुनकर भवदत्ता को सन्तोष

श्रुत्वेति श्रेणिको राजा जिनभक्तिपरायणः। दत्त्वा तस्मै महादानं परोक्षे कृतवन्दनः ॥३३॥
 आनन्ददायिनीं भेरीं दापयित्वातिसंभ्रमी। चलच्चामरसद्भूत्या चलितो निश्चलाशयः ॥३४॥
 समवादिसृतिं दृष्ट्वा हृष्टो राजा जगद्धिताम्। मेघमालां मयूरो वा धातुर्वादीव सद्रसम् ॥३५॥
 तं वीक्ष्य केवलज्ञान-लोचनं परमेष्ठिनम्। प्रणम्य प्रातिहार्यादिसंयुक्तं सेवितं सुरैः ॥३६॥
 विशिष्टाष्टमहाद्रव्यैर्जलाद्यैर्जिनपुङ्गवम्। संपूज्य जगतां पूज्यं चकार स्तवनं शुभम् ॥३७॥
 जय त्वं जिनदेवात्र कर्मेन्धनहुताशनः। दुःखदारिद्र्यदावाग्निशमनैकघनाघनः ॥३८॥
 जय त्वं जिनसद्भानो लोकालोकप्रकाशकः। वचनांशुलसज्जालैर्भव्यपद्मविकाशकः ॥३९॥
 जय जन्मजरामृत्युज्वरनाशभिषग्वरः। अनेकगुणमाणिक्य-रोहणाद्रे महास्थिरः ॥४०॥
 त्वं त्राता जगतां तात त्वं त्रैलोक्यविभूषणम्। त्वं ह्यकारणसद्बन्धुस्त्वमापत्क्षयकारणम् ॥४१॥
 त्वत्पादसेवया देव यत्सुखं प्राप्यते ध्रुवम्। अन्यैर्भूरितरक्लेषैः स्वप्ने तदपि दुर्लभम् ॥४२॥

हुआ। वह मुनि को नमस्कार कर घर पर आ गई उसने फिर मोहवश हो उस मेंढक को भी अपने यहाँ ला रखा। मेंढक वहाँ आकर बहुत प्रसन्न रहा ॥२८-३०॥

इसी अवसर में वैभार पर्वत पर महावीर भगवान् का समवसरण आया। वनमाली ने आकर श्रेणिक को खबर दी कि राजराजेश्वर, जिनके चरणों को इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि प्रायः सभी महापुरुष पूजा-स्तुति करते हैं, वे महावीर भगवान् वैभार पर्वत पर पधारे हैं। भगवान् के आने के आनन्द-समाचार सुनकर श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए। भक्तिवश हो सिंहासन से उठकर उन्होंने भगवान् को परोक्ष नमस्कार किया। इसके बाद इन शुभ समाचारों की सारे शहर में सबको खबर हो जाए, इसके लिए उन्होंने आनन्द घोषणा दिलवा दी। बड़े भारी लाव-लश्कर और वैभव के साथ भव्यजनों को संग लिए वे भगवान् के दर्शनों को गए। वे दूर से उन संसार का हित करने वाले भगवान् के समवसरण को देखकर उतने ही खुश हुए, जितने खुश मोर मेघों को देखकर होते हैं। रासायनिक लोग अपना मन चाहा रस लाभ कर होते हैं। समवसरण में पहुँचे। भगवान् के उन्होंने दर्शन किए और उत्तम से उत्तम द्रव्यों से उनकी पूजा की। अन्त में उन्होंने भगवान् के गुणों का गान किया ॥३१-३७॥

हे भगवान्! हे दया के सागर! ऋषि-महात्मा आपको 'अग्नि' कहते हैं, इसलिए कि आप कर्मरूपी ईंधन को जला कर खाककर देने वाले हैं। आपको वे 'मेघ' भी कहते हैं, इसलिए कि आप प्राणियों को जलाने वाली दुःख, शोक, चिन्ता, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि दावाग्नि को क्षणभर में अपने उपदेश रूपी जल से बुझा डालते हैं। आप 'सूरज' भी हैं, इसलिए कि अपने उपदेशरूपी किरणों से भव्यजनरूपी कमलों को प्रफुल्लित कर लोक और अलोक के प्रकाशक हैं। नाथ, आप एक सर्वोत्तम वैद्य हैं, इसलिए कि धन्वन्तरी से वैद्यों की दवा से भी नष्ट न होने वाली ऐसी जन्म, जरा, मरण रूपी महान् व्याधियों को जड़ मूल से खो देते हैं। प्रभो, आप उत्तमोत्तम गुणरूपी जवाहरात के उत्पन्न करने वाले पर्वत हो, संसार के पालक हो, तीनों लोक के अनमोल भूषण हो, प्राणी

ततः श्रीमज्जिनाधीश भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी। त्वद्भक्तिर्मे सदा भूयादाससारं शुभप्रदा ॥४३॥
 इति स्तुत्वा जिनाधीशं भक्त्या नत्वा मुहुर्मुहुः। गौतमादीन्मुनींश्चापि प्रणम्य श्रेणिकः स्थितः ॥४४॥
 तथा च भवदत्तादौ जिनभक्त्या गते सति। वन्दनार्थं जिनेन्द्रस्य शर्मकोटिविधायिनः ॥४५॥
 श्रुत्वा सुरखगेन्द्रादिवादित्रध्वनिमम्बरे। प्रोल्लसज्जयघोषं च स भेको जातसंस्मृतिः ॥४६॥
 तद्वापीसंभवं पद्म समादाय समुत्सुकः। श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्जपूजार्थं चलितो भृशम् ॥४७॥
 मार्गे गच्छन्मुदा हस्तिपादेनैव प्रचम्पितः। त्रैलोक्यप्रभुपूज्यस्य वर्द्धमानजिनेशिनः ॥४८॥
 पूजानुरागतोत्यन्तसमर्जितशुभोदयात्। मृत्वा सौधर्मकल्पेऽसौ देवो जातो महर्द्धिकः ॥४९॥
 क्व भेकः क्व च देवोभू-न्न हि चित्रं जगत्त्रये। जिनपूजाप्रसादेन किं शुभं यत्र जायते ॥५०॥
 तत्र चान्तर्मुहूर्तेन भूत्वासौ नवयौवनः। रूपलावण्यसम्पन्नः पूर्वपुण्येन संयुतः ॥५१॥
 नाना रत्नप्रभाजालैर्जटिलो दिव्यवस्त्रभाक्। सुगन्धकुसुमोद्दाममालालंकृतविग्रहः ॥५२॥
 लब्ध्वावधिमहाबोधः ज्ञानं पूर्वभवान्तरे। पूजया जिननाथस्य भावनामात्रतो यतः ॥५३॥
 देवो जातोस्मि दिव्योहं तस्मात्सा क्रियते तराम्। संविचार्येति सद्भक्त्या मुकुटाग्रे विधाय च ॥५४॥

मात्र के निःस्वार्थ बन्धु हो, दुःखों के नाश करने वाले हो और सब प्रकार के सुखों के देने वाले हो। जगदीश! जो सुख आपके पवित्र चरणों की सेवा से प्राप्त हो सकता है वह अनेक प्रकार के कठिन से कठिन परिश्रम द्वारा भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए हे दयासागर! मुझ गरीब को अपने चरणों को पवित्र और मुक्ति का सुख देने वाली भक्ति प्रदान कीजिए। जब तक कि मैं संसार से पार न हो जाऊँ। इस प्रकार बड़ी देर तक श्रेणिक ने भगवान् का पवित्र भावों से गुणानुवाद किया। बाद वे गौतम गणधर आदि महर्षियों को भक्ति से नमस्कार कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गए ॥३८-४४॥

भगवान् के दर्शनों के लिए भवदत्ता सेठानी भी गई, आकाश में देवों का जय-जयकार और दुन्दुभी बाजों की मधुर-मनोहर आवाज सुनकर उस मेंढक को जातिस्मरण हो गया। वह भी तब बावड़ी में एक कमल की कली को अपने मुँह में दबाये बड़े आनन्द और उल्लास के साथ भगवान् की पूजा के लिए चला। रास्ते में आता हुआ वह हाथी के पैर नीचे कुचला जाकर मर गया। पर उसके परिणाम त्रैलोक्य पूज्य महावीर भगवान् की पूजा में लगे हुए थे, इसलिए वह उस पूजा के प्रेम से उत्पन्न होने वाले पुण्य से सौधर्म स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुआ। देखिये, कहाँ तो वह मेंढक और कहाँ अब स्वर्ग का देव पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कारण जिनभगवान् की पूजा से सब कुछ प्राप्त हो सकता है ॥४५-५०॥

एक अंतर्मुहूर्त में वह मेंढक का जीव आँखों में चकाचौंध लाने वाला तेजस्वी और सुन्दर युवा देव बन गया। नाना तरह के दिव्य रत्नमयी अलंकारों की कान्ति से उसका शरीर ढक रहा था, बड़ी सुन्दर शोभा थी। वह ऐसा जान पड़ता था, मानों रत्नों की एक बहुत बड़ी राशि रखी हो या रत्नों का पर्वत बनाया गया हो। उसके बहुमूल्य वस्त्रों की शोभा देखते ही बनती थी। गले में उसके स्वर्गीय कल्पवृक्षों के फूलों की सुन्दर मालाएँ शोभा दे रही थी। उनकी सुन्दर सुगन्ध ने सब दिशाओं को

भेकचिह्नं महाभूत्या समागत्य सुरोत्तमः। प्रवृत्तो जिनपादाब्जपूजां कर्तुं प्रहर्षतः ॥५५॥
 तं पूजां जिनराजस्य कुर्वाणं शर्मदायिनीम्। विलोक्य श्रेणिको राजा नत्वा संपृष्टवान्गुरुम् ॥५६॥
 स्वामिन्नस्य किरीटाग्रे भेकचिह्नं प्रवर्तते। तस्य किं कारणं ब्रूहि संशयध्वान्तभास्करः ॥५७॥
 तच्छ्रुत्वा गौतमस्वामी संज्ञानमयविग्रहः। अवोचत्तस्य वृत्तान्तं सर्वमेव प्रपञ्चतः ॥५८॥
 श्रुत्वा तद्भव्यलोकास्ते सर्वे श्रीश्रेणिकादयः। पूजाफलं जगत्सारं तस्यां जातास्तरां रताः ॥५९॥
 मत्वेति श्रीजिनेन्द्राणां पूजातिशयमुत्तमम्। महाभव्यैः सदाकार्या जिनार्चा शर्मकारिणी ॥६०॥
 धनं धान्यं महाभाग्यं सौभाग्यं राज्यसम्पदा। पुत्रमित्रकलत्रं च सत्कुलं गोत्रमुत्तमम् ॥६१॥
 दीर्घायुर्दुर्गतेऽनाशो विनाशः पापसन्ततेः। अभीष्टफलसम्प्राप्तिर्मणिमुक्ताफलादिकम् ॥६२॥
 सम्यक्त्वं मुक्तिसद्बीजं भवभ्रमणनाशनम्। सद्विद्या सच्चरित्रं च सौख्यं स्वर्गापवर्गयोः ॥६३॥
 प्राप्यते भो महाभव्या जिनपूजाप्रसादतः। तस्मात्प्रमादमुत्सृत्य कार्या सा सौख्यदायिनी ॥६४॥
 सम्यक्त्वद्रुमसिञ्चने शुभतरा कादम्बिनी बोधदा भव्यानां वरभारतीव नितरां दूती सतां सम्पदे।
 मुक्तिप्रोन्नतमन्दिरस्य सुखदा सोपानर्पक्तिः शुभा पायाद्वस्तु समस्तसौख्यजननी पूजा जिनानां सदा ॥६५॥

सुगन्धित बना दिया था। उसे अवधिज्ञान से जान पड़ा कि मुझे जो यह सब सम्पत्ति मिली है और मैं देव हुआ हूँ, यह सब भगवान् की पूजा की पवित्र भावना का फल है। इसलिए सबसे पहले मुझे जाकर पतित-पावन भगवान् की पूजा करनी चाहिए। इस विचार के साथ ही वह अपने मुकुट पर मेंढक का चिह्न बनाकर महावीर भगवान् के समवसरण में आया। भगवान् की पूजन करते हुए इस देव के मुकुट पर मेंढक के चिह्न को देखकर श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने गौतम भगवान् को हाथ जोड़ कर पूछा-हे संदेहरूपी अँधेरे को नाश करने वाले सूरज! कृपाकर कहिए कि इस देव के मुकुट पर मेंढक का चिह्न क्यों है? मैंने तो आज तक देव के मुकुट पर ऐसा चिह्न नहीं देखा। ज्ञान की प्रकाशमान ज्योतिरूप गौतम भगवान् ने तब श्रेणिक को नागदत्त के भव से लेकर जब तक की सब कथा कह सुनाई उसे सुनकर श्रेणिक को तथा अन्य भव्यजनों को बड़ा ही आनन्द हुआ। भगवान् की पूजा करने में उनकी बड़ी श्रद्धा हो गई। जिनपूजन का इस प्रकार उत्कृष्ट फल जानकर अन्य भव्यजनों को भी उचित है कि वे सुख देने वाली इस जिन पूजन को सदा करते रहें। जिन पूजा के फल से भव्यजन धन-दौलत, रूप-सौभाग्य, राज्य-वैभव, बाल-बच्चे और उत्तम कुछ जाति आदि सभी श्रेष्ठ सुख-चैन की मनचाही सामग्री लाभ करते हैं, वे चिरकाल तक जीते हैं, दुर्गति में नहीं जाते और उनके जन्म-जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिनपूजा सम्यग्दर्शन और मोक्ष का बीज है, संसार का भ्रमण मिटाने वाली है और सदाचार, सद्विद्या तथा स्वर्ग-मोक्ष के सुख की कारण है। इसलिए आत्महित के चाहने वाले सत्पुरुषों को चाहिए कि वे आलस छोड़कर निरन्तर जिनपूजा किया करें। इससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा ॥५१-६४॥

यही जिन-पूजा सम्यग्दर्शनरूपी वृक्ष के सींचने को वर्षा सरीखी है, भव्यजनों को ज्ञान देने वाली मानों सरस्वती हैं, स्वर्ग की सम्पदा प्राप्त कराने वाली दूती है, मोक्षरूपी अत्यन्त ऊँचे मन्दिर

शक्राः स्नानविधायिनः सुरगिरिः स्नानप्रपीठं पयः सिन्धुर्यस्य सुकुण्डिका सुरगणाः सत्किंकराः सादराः ।
 नर्तक्योप्सरसः सुकीर्त्तिमुखरा गन्धर्वसन्नाकिनो जाता जन्ममहोत्सवेऽत्र भवतां स श्रीजिनः शं क्रियात् ॥६६॥
 श्रीमच्चारुमयूरवाहनपरा पद्मासना निर्मला मिथ्याध्वान्तभरप्रणाशविलसद्भास्वत्प्रभाभासुरा ।
 भव्याब्जप्रवनप्रमोदजननी सम्मार्गसंदर्शिनी देवेन्द्रादिसमर्चिता जिनपतेर्जीयात्सतां भारती ॥६७॥
 जातः श्रीमति मूलसंघतिलके सारस्वते सच्छुभे गच्छे स्वच्छतरे प्रसिद्धमहिमा श्रीकुन्दकुन्दाव्ये ।
 श्रीजैनागमसिन्धुवर्द्धनविधुर्विद्वज्जनैः सेवितः श्रीमत्सूरिमतल्लिको गुणनिधिर्जीयात्प्रभाचन्द्रवाक् ॥६८॥
 श्रीमज्जैनपदाब्जसारमधुकृच्छ्रीमूलसंघाग्रणीः सम्यग्दर्शनसाधुबोधविलसच्चारित्रचूडामणिः ।
 विद्यानन्दिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुर्भूयात्सतां शर्मणे ॥६९॥
 श्रीसर्वज्ञविशुद्धिभक्तिनिरतो भव्यौघसम्बोधकः कामकूरकरीन्द्रदुर्मदलये कण्ठीरवो निष्ठुरः ।
 ज्ञानध्यानरतः प्रसिद्धमहिमा रत्नत्रयालंकृतः कुर्याच्छर्मसतां प्रमोदजनकः श्रीसिंहनन्दी गुरुः ॥७०॥

तक पहुँचाने को मानो सीढ़ियों की श्रेणी है और समस्त सुखों को देने वाली है। यह आप भव्यजनों की पाप कर्मों से सदा रक्षा करें। जिनके जन्मोत्सव के समय स्वर्ग के इन्द्रों ने जिन्हें स्नान कराया, जिनके स्नान का स्थान सुमेरु पर्वत नियम किया गया और समुद्र जिनके स्नानजल के लिए बावड़ी नियत की गई, देवता लोगों ने बड़े आदर के साथ जिनकी सेवा बजाई, देवांगनाएँ जिनके इस मंगलमय समय में नाची और गन्धर्व देवों ने जिनके गुणों को गाया, जिनका यश बखान किया ऐसे जिन भगवान् आप भव्य-जनों को और मुझे शान्ति प्रदान करें ॥६५-६६॥

वह भगवान् की पवित्र वाणी जय लाभ करे, संसार में चिर समय तक रहकर प्राणियों को ज्ञान के पवित्र मार्ग पर लगाये, जो अपने सुन्दर वाहन मोर पर बैठी हुई अपूर्व शोभा को धारण किए हैं, मिथ्यात्वरूपी गाढ़े अँधेरे को नष्ट करने के लिए जो सूरज के समान तेजस्विनी हैं, भव्यजनरूपी कमलों के वन को विकसित कर आनन्द की बढ़ाने वाली हैं, जो सच्चे मार्ग को दिखाने वाली हैं और स्वर्ग के देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुष जिसे बहुत मान देते हैं ॥६७॥

मूलसंघ के सबसे प्रधान सारस्वत नाम के गच्छ में कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में प्रभाचन्द्र एक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। वे जैनागमरूपी समुद्र के बढ़ाने के लिए चन्द्रमा की शोभा को धारण किए थे। बड़े-बड़े विद्वान् उनका आदर सत्कार करते थे। वे गुणों के मानों जैसे खजाने थे, बड़े गुणी थे ॥६८॥

इसी गच्छ में कुछ समय बाद मल्लिभूषण भट्टारक हुए। वे मेरे गुरु थे। वे जिनभगवान् के चरण-कमलों के मानों जैसे भौरे थे-सदा भगवान् की पवित्र भक्ति में लगे रहते थे। मूलसंघ में इनके समय में यही प्रधान आचार्य गिने जाते थे। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के ये धारक थे। विद्यानन्दि गुरु के पट्टरूपी कमल को प्रफुल्लित करने को ये जैसे सूर्य थे। इनसे उनके पट्ट की बड़ी शोभा थी। ये आप सत्पुरुषों को सुखी करें ॥६९॥

वे सिंहनन्दी गुरु भी आपको सुखी करें, जो जिन भगवान् की निर्दोष भक्ति में सदा लगे रहते थे। अपने पवित्र उपदेश से भव्यजनों को सदा हितमार्ग दिखाते रहते थे। जो कामरूपी निर्दयी हाथी

प्रोद्यत्सम्यक्त्वरत्नो जिनकथितमहासप्तभङ्गीतरङ्गैर्निर्द्धूतैकान्तमिथ्यामतमलनिकरः क्रोधनक्रादिदूरः ।
 श्रीमज्जैनेन्द्रवाक्यामृतविशदरसः श्रीजिनेन्दुप्रवृद्धिर्जीयाम्ने सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपण्यः श्रुताब्धिः ॥७१॥
 तेषां पादपयोजयुग्मकृपया श्रीजैनसूत्रोचिताः सम्यग्दर्शनबोधवृत्ततपसामाराधनासत्कथाः ।
 भव्यानां वरशान्तिकीर्तिविलसत्कीर्त्तिप्रमोदं श्रियं कुर्युः संरचिता विशुद्धशुभदाः श्रीनेमिदत्तेन वै ॥७२॥

इति कथाकोशे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्य-ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते
 जिनपूजाफलप्राप्तभेकाख्याने चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः ।

का दुर्मद नष्ट करने को सिंह सरीखे थे, काम को जिन्होंने वश कर लिया था। वे बड़े ज्ञानी ध्यानी थे, रत्नत्रय के धारक थे और उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी ॥७०॥

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजय लाभ करें, जो ज्ञान के समुद्र हैं। देखिये, समुद्र में रत्न होते हैं आचार्य महाराज सम्यग्दर्शनरूपी श्रेष्ठ रत्न को धारण किए हैं। समुद्र में तरंगें होती हैं वे भी सप्तभंगीरूपी तरंगों से युक्त हैं-स्याद्वादविद्या के बड़े ही विद्वान् हैं। समुद्र की तरंगें जैसे कूड़े-करकट को निकाल बाहर फेंक देती हैं उसी तरह ये अपनी सप्तभंगी वाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकट को हटा दूर करते थे, अन्य मत के बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर विजय लाभ करते थे। समुद्र में मगरमच्छ, घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं पर प्रभाचन्द्ररूपी समुद्र में उससे यह विशेषता थी, अपूर्वता थी कि उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेषरूपी भयानक मगरमच्छ न थे। समुद्र में अमृत रहता है और इनमें जिन भगवान् का वचनमयी अमृत समाया हुआ था और समुद्र में अनेक बिकने योग्य वस्तुएँ रहती हैं ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होने वाली पुण्यरूपी विक्रय वस्तु को धारण किए थे। अतएव वे समुद्र की उपमा दिये गए ॥७१॥

इन्हीं के पवित्र चरणकमलों की कृपा से जैनशास्त्रों के अनुसार मुझ नेमिदत्त ब्रह्मचारी ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप को प्राप्त करने वालों की इन पवित्र पुण्यमय कथाओं को लिखा है। कल्याण करने वाली ये कथाएँ भव्यजनों की धन-दौलत, सुख-चैन, शान्ति-सुयश और आमोद-प्रमोद आदि सभी सुख सामग्री प्राप्त कराने में सहायक हो। यह मेरी पवित्र कामना है ॥७२॥

